अध्याय- प्रथम

प्रस्तावना

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

1.0 भूमिका–

समाजवाद, धर्मनिरेपक्षता एवं लोककल्याणकारी समाज की स्थापना, भारतीय लोकतंत्र के आदर्श रहे हैं। भारतीय संविधान में भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया हैं। सन् 1950 में धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र की स्थापना करते समय यह आशा की गई थी कि शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप सांप्रदायिक भावनायें क्षीण हो जायेगी। किन्तु आज तक हम धर्मनिरपेक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने में पूर्णतया सफल नहीं हो सकें। धर्मनिरपेक्षता वह मूल्य है, जिसे देश की शिक्षा व्यवस्था में समर्थन एवं अभिव्यक्ति मिलनी चाहिये।

समाज संस्कृति और शिक्षा परस्पर धर्मनिरपेक्षता के निर्माण में सहायक हैं, क्योंकि शिक्षा का कार्य जहां तक एक ओर संस्कृति का संरक्षण, हस्तांतरण करना है, वहीं दूसरी और संस्कृति में समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिशोधन एवं सृजन करना भी हैं, भारत में प्राचीन काल से ही समाज, संस्कृति और शिक्षा के इस अन्योन्यश्रित संबंध एवं सामाजिक प्रगति हेतु शिक्षा के महत्व को समझा जाता रहा हैं। लूनिया, (1985) के अनुसार– "शिक्षा व्यैक्ति, सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति के लिए ही नहीं अपितु सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिये भी अनिवार्य हैं। भारतीयों ने शिक्षा के इस गहन महत्व को समझ लिया था और इसलिए भारत के सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी।" वर्तमान भारतीय समाज के निर्माण में भी शिक्षा की महती भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता हैं। एतद्

निमित्त आवश्यकता मात्र इस बात की है कि वर्तमान शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की हो, जो संविधान में निहित आधारभूत मूल्यों के अनुरूप भावी भारतीय समाज के निर्माण की संकल्पना को साकार कर सकें। समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व भारतीय प्रजातंत्र के आधार स्तम्भ हैं। समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, एवं लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना, भारतीय लोकतंत्र के आदर्श रहें हैं। भारतीय संविधान की भूमिका में कहा गया है कि हम भारत के लोग,भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्तंत्रता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित हैं।''

इन्हीं निर्धारित मूल्यों के अनुसार हमारी शिक्षा व्यवस्था होने की अपेक्षा की जाती है। परन्तु भारतीय समाज का वर्तमान स्वरूप शिक्षक इन उद्देश्यों की प्राप्ति को परिलक्षित करता नहीं प्रतीत हो रहा हैं। क्योंकि समाज में दिनों दिन बढ़ रही असहिष्णुता व कट्टरता इन उद्देश्यों की अप्राप्ति की द्योतक हैं।

आज भी धर्म के आधार पर जगह-जगह दंगे हो रहे हैं। कहीं जातीयता का अधार लेकर, तो कहीं प्रांतीयता का आधार लेकर। राजनीतिक संगठन इन बातो का भरपूर लाभ प्राप्त करते हुये अपनी-अपनी सियासी रोटियाँ सेंक रहें हैं। समाज की इन्हीं समस्याओं व धर्मनिरपेक्षता संबंधी शैक्षिक उद्देश्यों के असफलता बारे में रूहेला, (1992) कहते है, ''धर्मनिरपेक्षता की बार-बार

दुहाई देने के बाबजूद हमारे राजनीतिक चुनाव, नौकरी, आर्थिक व सामाजिक लाभों के वितरण तथा पाठशालाओं के संगठन में एक सीमा तक जातिवाद, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, जान–पहिचान, व घूसखोरी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। तथा एक औसत नागरिक के लिए समानता, स्वतंत्रता व न्यूनतम सुविधायें पाना व्यावहारिक रूप से असंभव सा हो गया हैं।''

भारत में धर्मनिरपेक्षता की स्थिति के संबंध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री गौरे, (1990) नें भी अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि, ''सार्वजनिक व्यक्यिों द्वारा सार्वजनिक जीवन में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बार–बार बल दिया गया है। और यह भारतीय राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष रूप में प्रकट भी हुई हैं। परन्तु व्यक्तिगत जीवन के तक्र, बुद्धिवाद एवं सार्वजनिक जीवन के धर्मनिरपेक्षवाद के संबंध बनाये रखने पर समुचित ध्यान या बल नहीं दिया गया हैं।'' भारत जैसे देश जहाँ विभिन्न जाति, धर्म, एवं सम्प्रदाय के लोग निवास करते है, के लिए धर्मनिरपेक्षता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए गोरे (1990) आगे कहते है कि धर्मनिरपेक्षता भारत जैसे जटिल एवं अनेक धर्मो एवं समाज वाले राज्य के लिए बुद्धिजीवी की नीति हैं। यह वह मूल्य है, जिसे देश की शिक्षा व्यवस्था में समर्थन एवं अभिव्यक्ति मिलनी ही चाहिए। धर्मनिरपेक्षता को शिक्षा व्यवस्था में प्रयोग करने से पहले आवश्यक है कि धर्मनिरपेक्षता के ऐतिहासिक पटल एवं भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता का अवलोकन किया जायें।

1.1 धर्मनिरपेक्षता अर्थ–

धर्म का अर्थ धारण करने से है। मानव अपने जीवन में जिन नियमों व मूल्यों को धारण करता है वही उसका धर्म हैं। संकुचित अर्थ में धर्म का अर्थ अन्धविश्वास करना, माला जपना,

मंदिर जाना, तिलक लगाना, नमाज पढ़ना, चर्च जाना, आदि क्रियाओं से जाना जाता है। व्यापक अर्थो में धर्म का तात्पर्य हृदय को पवित्र बनाना, उत्तम चरित्र एवं नैतिकता प्राप्त करना, मन में आध्यात्मिक मूल्यों को स्थापित करना आदि क्रियाएँ आती हैं।

कॉन्ट के अनुसार- "धर्म हमारे सभी कर्तव्यों को दैवीय आदर्श के रूप में मान्यता देने को कहते है।"

हेराल्ड होफडिंग के अनुसार- "धर्म का सार, मूल्यों के धारण करने में विश्वास को कहते हैं।"

डॉ. राधाकृष्णन भारतीय धर्मनिरपेक्षता के अधिकारिक प्रवक्ता माने जाते है उनके अनुसार सभी धर्मो के प्रति सम्भाव रखना ही धर्मनिरपेक्षता है यही भारतीय धर्मनिरपेक्षता की सही व्याख्या है। इसमें न तो धर्म का विरोध या उपेक्षा की जाती है। और न ही उसे अप्रासंगिक माना जाता है। इसमें राज्य का संचालन किसी धर्म के निर्देशानुसार नहीं होता हैं। राज्य सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करता है।

ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक भारत में विभिन्न प्रकार के धर्म पनपते रहें हैं। भारतीय दर्शन में सभी के प्रति "जियों और जीनों दो" सिद्धांत का पालन किया जाता रहा है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के एक प्रस्ताव (19 अक्टूबर 1951) में स्पस्टतः कहा गया था कि- "अपने जन्म काल से ही कांग्रेस का उद्देश्य और घोषित नीति यही रही है कि एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्रीय राज्य की स्थापना हो, जिसमें सभी धर्मो के प्रति समान आदर हो किन्तु किसी धर्म, जाति के प्रति पक्षपात न हो और राष्ट्र को बनाने वाली सभी जातियों अथवा व्यक्तियों को समान अधिकार और अवसर की स्वतंत्रता मिले।

भारत गणराज्य का विधान इसी आधारभूत सिद्धांत पर आधारित हैं।''

हमारे भारतीय संविधान में भी यह सुनिश्चित किया गया है कि, राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म, जाति, वर्ग, लिंग अथवा जन्म स्थान अथवा उनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

संविधान में ही एक अन्य स्थान पर स्पष्ट किया गया है कि, सब व्यक्तियों को विश्वास की स्वतंत्रता तथा किसी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने एवं प्रचार करने का समान अधिकार हैं।

इससे एक बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय परिवेश में धर्मनिरेपक्षता के अर्थ धर्महीनता या धर्म विमुखता नहीं है, यह तो एक पाश्चात्य अवधारणा है, जिसके मूल्य में अनेंक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक कारण रहें है। धर्म के स्वरूप को समझते हुए यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि सांस्कृतिक शब्दों का सही अर्थ उन्हें उनके सांस्कृतिक परिवेश में रखकर ही समझ सकते है। धर्म एवं धर्मनिरपेक्षता ये दोनों ही सांस्कृतिक शब्द हैं यही कारण है कि संस्कृति-भेद से इनके अर्थो में जमीन आसमान का अन्तर हैं। पाश्चात्य संस्कृति में इन शब्दों के जो अर्थ शब्दकोषों में पाये जाते हैं वे भारतीय परिवेश मे तक्र एवं परम्परा की कसौटी पर खरा नहीं उतरते है। पाश्चात्य संस्कृति में इन शब्दों का उपयोग अत्यंत सकीर्ण अर्थो में हुआ हैं। डॉ. एस.राधाकृष्णन के ग्रंथ मूलतः अंग्रेजी में लिखे होने के कारण 'धर्म' के लिए 'रिलीजन' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी अनुवादों में 'रिलीजन' का अनुवाद 'धर्म' हुआ है, जो कि उसका पर्याय या समानार्थी माना गया हैं। बहुत से लोग धर्म जो सम्प्रदाय समझ बैठते है, वे

सम्प्रदाय को एक वर्ग विशेष द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए तैयार किये जाते है। ये सम्प्रदाय ही समय-समय पर धर्म का जामा पहनकर जनता के ठगते रहते है जिससे लोगों के हृदय में धर्म के प्रति कुछ उदासीनता या अनास्था पैदा हो गई हैं।

धर्म शास्त्रों के मतानुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नही हैं बल्कि यह समाज में व्यक्ति के जीवन का वह ढ़ंग या आचार संहिता है जो समाज के आधारभूत अंग के रूप में मनुष्य के कर्मो एवं कृत्यों को व्यवस्थित करता है। सम्प्रदाय शब्द न संकीर्णतायुक्त है और न हेय। लोगों के निहित स्वार्थो एवं अविवेक के कारण इस शब्द के प्रति लोक में अरूचि पैदा हो गई हैं। **"इस साधन एवं मार्ग के अतिरिक्त मनुष्य का कल्याण संभव ही नहीं हैं। दूसरे सब पंथहीन एवं त्याज्य है।"** ऐसा प्रचार वे ही स्वार्थी लोग करते है जो सम्प्रदाय के नाम पर लोगों को भुलावे में रखकर अपने अहंकार और स्वार्थ की निरंतर पूर्ति में लगे रहते है। ऐसे ही कारणों से साम्प्रदायिक का अर्थ ही संकीर्ण मनोवृत्ति का व्यक्ति समझा जाने लगा। वास्तविकता, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो सर्वथा भिन्न हैं। यदि व्यक्ति आस्तिक हैं तो किसी न किसी सम्प्रदाय विशेष से संबद्ध होगा ही, ऐसा व्यक्ति साम्प्रदायिक होगा यह तो एक सहज परिणाम है। हम उसे संकीर्ण मनोवृत्ति का अथवा दूषित अर्थ में साम्प्रदायिक तब कहेंगे जब वह दूसरे सम्प्रदायों, पंथों अथवा मजहबों की निन्दा करता है, उनसे घृणा-द्वेष करता हो अथवा दूसरे पंथों अथवा सम्प्रदायों को हीन समझता हो। यदि वह अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ समझे तब कोई आपत्ति नहीं। श्रेष्ठ समझने के कारण अथवा वंश-परम्परा से ही तो उसने सम्प्रदाय विशेष का वरण किया हैं। इसके साथ ही यदि वह अन्य

सम्प्रदायों के प्रति भी सहिष्णु एवं उदार बना रहे हैं तो वह सच्चें धर्म में धर्मनिरपेक्ष है, न की साम्प्रदायिक।

1.2 धर्मनिरपेक्षता : ऐतिहासिक परिदृश्य–

यूरोप में राज्य व्यवस्था पर चर्च के अत्यधिक आधिपत्य के विरोध में 'सेक्यूलर स्टेट' या 'धर्मनिरपेक्ष ' राज्यों का जन्म हुआ। पोप के धर्मतंत्रीय आधिपत्य से मुक्त इन राज्यों पर धर्म का कोई प्रभाव या दबाव नहीं रहा। राज्यों को धर्म से परे रखा गया। सम्राट कास्टांटाइन ने ईसाइ धर्म स्वीकार करने के बाद ईसाई धर्म को अपने समस्त राज्य का राजधर्म घोषित किया और 366ई. में उसने उन सभी पूजाग्रहों को बंद कराने का आदेश दिया जो ईसाई धर्म के नहीं थें। इसके बाद यूरोप में एक ऐसा दौर शुरू हो गया। जिसमें कभी चर्च तो कभी राज्य (स्टेट) एक दूसरे पर हावी होने लगें।

दार्शनिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा का मूल जेम्स मिल और बेंथम के उपयोगिता बाद में निहित हैं। इन्हें इसकी प्रेरणा थॉमस पेन एवं रिचर्ड कर्लाइल से मिली, जो ईश्वर की सत्ता में कतई विश्वास नहीं करते है। उपयोगितावाद ने धर्मनिरपेक्षता को दो आधार दिये। पहला विचारों की स्वतंत्रता के साथ मनुष्य के व्यक्ति का विकास और दूसरा समाज के निर्माण में धर्म का कोई सरोकार न होना। संयुक्त राज्य अमेरिका में धर्म से सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का सूत्र पात हुआ। यूरोप में राजनीतिक स्वतंत्रता आई। संयुक्त राज्य अमेरिका में धर्म संबंधी भिन्न मत होने के कारण धार्मिक स्वतंत्रता, व्यक्ति और समाज के चिन्तन का एक अंग बन गई। लेकिन यूरोप में यह भाव धर्म के प्रति लोगो की उदासीनता या विरोध के कारण हुआ। राजनीति के क्षेत्र में धर्मनिरपेक्षता का उदय उन घटनाओं के कारण हुआ जो

सन् 1832 के रिफार्म बिल बनने के पहले हुई और जिनके परिणाम स्वरूप यह बिल बना था। धर्मनिरपेक्षता की भावना को राबर्ट ओवन के समाजवाद और चार्टिस्ट आंदोलन से भी प्रेरणा मिली। इसकी संकल्पना को मूर्तरूप देने का श्रेय जार्ज जेकन होलीओक को हैं। होलीओक ने यह शब्द (सेक्यूलरिज्म) सन् 1850 में ब्रेडला से मिलने के बाद गढ़ा था। होलीओक का कहना था ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सेक्युलरिज्म की एक अनिवार्य शर्त हैं।

1.3 धर्मनिरपेक्षता : भारतीय परिपेक्ष्य –

भारत एक विशाल देश हैं इस विशालता के कारण इस देश में हिन्दू, मुस्लिम, जैन, ईसाइ,पारसी, सिक्ख आदि विभिन्न धर्मो तथा जातियों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते है। देश के सभी निवासियों की भाषाऐं रीतिरिवाज तथा परम्पराएं अलग–अलग हैं। अकेले हिन्दू धर्म को ही ले लीजिए। यह धर्म भारत का सबसे पुराना धर्म है। जो वैदिक धर्म सनातन धर्म, पैराणिक धर्म तथा ब्रह्म समाज आदि विभिन्न मतों, सम्प्रदायों तथा जातियों में बटा हुआ हैं। लगभग यही हाल दूसरे धर्मो का भी हैं। कहने का तात्पर्य यह कि भारत में विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों, जातियों तथा प्रजातियों एवं भाषाओं के कारण आश्चर्यजनक विलक्षणता तथा विभिन्नता पाई जाती हैं।

वेदोपनिषदों की विश्वबन्धुत्व की भावना से लेकर अकबर के 'दीने इलाही' तक और उसके बाद भी कुछ घटनाओं को छोड़ धर्मनिरपेक्षता का क्रम बराबर जारी रहा। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने अपनी वसीयत में यह खास तौर से हिदायत दी थी कि बहुमत सम्प्रदाय की भावनाओं का ध्यान रखे, जहाँ तक हो सकें गोवध रोकें। उसका उत्तराधिकारी हुमायुँ चित्तौड़ की रानी का

राखी बंद भाई बना। अकबर ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता को उस सीमा तक पहुंच गया कि बदायूँनी जैसे कुछ संकीर्ण भावनाओं वाले उसे 'काफिर' कहते थे। उसने हिन्दुओं से सौहार्द्रपूर्ण संबंध ही नहीं अपितु रोटी–बेटी का संबंध भी स्थापित किया, उन्हें अपने प्रशासन में ऊँचे ओहदे प्रदान किये। यद्यपि पिता को कैद करके और भाइयों को मारकर औरंगजेब ने यह सत्ता हथियाई तो अपने कुकर्मो को न्योचित ठहराने के लिए उसने शाहजहाँ और दारिशकोह की उदार नीति को बदलने की कोशिश की। इस प्रकार हम देखते है कि औरगंजेब की कट्टरपंथिता का कारण राजनीतिक था। कारण जो भी रहे हो इतना सच है कि पूर्व शासको द्वारा पुष्ट धार्मिक सहिष्णुता को उसकी कट्टरता निर्मूल न कर सकी। पं. सुन्दरलाल द्वारा प्रस्तुत अभिलेख के अनुसार–

" सम्राटशाह आलम ने शिवाजी के उत्तराधिकारी पूना के पेशवा को अपनी सल्तनत का 'वकील' करार दिया और माधों जी सिंधिया को अपना 'फरजबन्द जिगरबंद' कहकर स्वंय देहली और आगरा का सूबेदार और राजधानी का शासक नियुक्त किया। शाह आलम के पुत्र अकबर शाह ने ब्रह्म समाज के जन्मदाता प्रसिद्ध राजाराममोहन राय को राजा का खिताब देकर अपना विश्वस्त वकील नियुक्त करके इंग्लिस्तान भेजा। सिराजुद्दौला का सबसे विश्वस्त अनुयायी राजामोहन लाल था जिसने प्लसी के मैदान में सिराजुद्दौला के लिये प्राण दिये। मीर जाफर ने दीवान रजा खॉ के स्थान पर नंद कुमार को अपना दीवान नियुक्त करने की जिद की। नंदकुमार ने ही मीर जाफर के मरने पर एक हिन्दू मंदिर से गंगाजल लाकर उसे अपने हाथों से अंतिम स्थान कराया। यही

हालत महाराजा रणजीत सिंह, होलकर, सिंधिया, हैदरअली और टीपू सुल्तान के दरबारों की थी।"

इन दृष्टान्तों से स्पष्ट होता है कि इतिहास यह बराबर प्रमाणित करता रहा है कि धार्मिक सहिष्णुता ही वह मार्ग हैं जिस पर चलकर हम अस्तित्व एवं सामाजिक सहिष्णुता बनाये रख सकते हैं। इन उदाहरणों से यह भी प्रमाणित होता है कि हिन्दुओं और मुस्लमानों की तकदीरे इस तरह जुड़ी हुई हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। यह बात दो चार नहीं बल्कि सैंकड़ों उदाहरणों के द्वारा प्रमाणित की जा सकती है। हिन्दी साहित्य में ऐसे कई मुसलमान कवि हुये (जैसे आलम, रसखॉन, ताज, गुलाम, हुसैन, जायसी, आदि) जिन्होंने हिन्दू धर्म एवं सांस्कृति के प्रति अपनी प्रगाढ़ और निश्छल श्रृद्धा का परिचय दिया। हिन्दी के ये मुसलमान कवि हिन्दू जनता को इतने प्यारे लगे कि वह इन्हें हिन्दी कवियों से भी श्रेष्ठ समझने लगी।

1.4 धर्मनिरपेक्षता तथा नैतिक मूल्य-

धर्म मानवीय एवं नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है इसलिए धर्मविहीन शिक्षा के कारण अधर्म, चरित्रहीनता भ्रष्टाचार आदि अनैतिक कार्यो में वृद्धि हो रही हैं। समाज दुर्बल हो रहा हैं और देश के नवयुवक बिना किसी मूल्य एवं आदर्श के पढ़ रहें हैं। अतः धर्मविहीन शिक्षा की नीति के विरोध स्वरूप भारतीय विचराको एवं शिक्षाविदों ने शिक्षा में धर्म एवं नैतिकता को फिर से महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयास प्रारंभ कर दिया। मुदालियर आयोग (1952-53) ने भी इस विचारधारा का पूर्ण समर्थन किया। आयोग के मतानुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसलिए इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य में धर्म को कोई स्थान नहीं है।

इसका अर्थ केवल यह है कि राज्य को किसी धर्म विशेष का समर्थन नहीं करना चाहिए।

व्यक्ति के जीवन में धार्मिक शिक्षा का स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा। इस शिक्षा का आधार संकीर्ण धर्म न होकर व्यापक धर्म होना चाहिए। संकीर्ण विचार धारा मानव में भेद उत्पन्न करता है और समाज में अनेक प्रकर के संघर्षो को जन्म देता हैं। इस विचारधारा से महात्मागांधी (1938)ने वर्धा- शिक्षा योजना में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया और कहा- "हमने वर्धा शिक्षा योजना में धर्मो की शिक्षा को इसलिए स्थान नहीं दिया क्योंकि हमे विश्वास है कि आजकल जिस प्रकार धर्मो की शिक्षा दी जाती हैं और उसका अनुसरण किया जाता हैं उससे एकता के बजाय संघर्ष उत्पन्न होता हैं।" अतः धार्मिक शिक्षा संकीर्ण धर्म पर आधारित न होकर व्यापक धर्म पर आधारित होनी चाहिए। क्योंकि आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य सांसारिक सुख तो प्राप्त कर लेता है पर उसे वास्तविक सुख और शान्ति नहीं मिलती। अतः भारतीय जीवन से धर्म को निकाल देना सर्वथा अनुचित हैं। धार्मिक शिक्षा सत्य-सदाचार, ईमानदारी आदि उत्तम गुणों का विकास करती है। धार्मिक शिक्षा मन, स्थिरता, इच्छाशक्ति और एकाग्रता को विकसित करने में सहायता करती है।

1.5 शिक्षक की भूमिका -

भारत जैसे अनेक धर्मो वाले धर्मनिरपेक्ष राज्य के लिए यह व्यावहारिक नहीं होगा कि वह किसी धर्म की शिक्षा दे। फिर भी एक ऐसे लोकतंत्रीय राज्य के लिए जरूरी है कि वह सभी धर्मो के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को बढ़ावा दे जिससे उसके नागरिक एक दूसरे को और ज्यादा अच्छी तरह से समझ सकें एवं शांतिपूर्वक साथ-साथ रह सकें।

हमारे देश में पैराणिक काल से ही अध्यापकों का बहुत आदर रहा हैं। धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों को जन अध्यापकों के रूप में संबोधित किया गया है। हजारों की संख्या में अध्यापकों का अभी भी और उनके छात्रों एवं अभिभावकों द्वारा बहुत आदर किया जाता है। फिर भी कुल मिलाकर पिछले कुछेक दशको के दौरान अध्यापकों की स्थिति में गिरावट आई हैं। इसके कारणों का पता लगाना कठिन नहीं है। उनकी सेवा शर्तो में गिरावट, एकाकीपन शिक्षा पद्धति का असाधारण विस्तार, अध्यापक प्रशिक्षण का निम्न स्तर, यह सामान्य धारणा बहुत बड़ी संख्या में अध्यापक अपने कर्तव्य को समुचित रूप से नहीं निभाते, समाज में मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन आदि। अध्यापकों के दर्जे का शिक्षा की कोटि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। और शिक्षा की बुराईयों के लिए यह उपेक्षित तरीके जिम्मेदार है, जिस उपेक्षित तरीके से समाज ने अध्यापको को देखा है और जिस तरीके से बहुत से अध्यापको नें अपना कार्य किया है। जैसे महाभारत काल के समय में गुरू द्रोणाचार्य जी ने सामाजिक रीति-रिवाजों अर्थात शिक्षा व्यवस्था की नीति राज्य के राजा के अधीन होने के कारण एकलव्य को गुरू द्रोणाचार्य जी का शिष्यतत्व प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका। बेशक एकलव्य की अपनी स्वयं की लग्न, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, जैसे जुनून ने समाज को विवश किया। अन्ततः समाज ने एकलव्य को एक उचित आदर्श के रूप में मान्यता प्रदान की।

अध्यापक, शैक्षणिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और शिक्षा के आयोजन के लिए एक प्रमुख साधन है। अध्यापकों का उल्लेख करते समय हम इनमें शिक्षा संस्थाओं के प्रमुखों, औपचारिक शिक्षा संस्थाओं में पूर्व कालिक अध्यापकों, अनौपचारिक तथा प्रौढ़

शिक्षा केन्द्रो के अनुदेशकों, दूरस्थ अध्ययन के विभिन्न तकनीकों के माध्यम से शिक्षा देने के कार्यरत् अध्यापकों और स्वैच्छिक तथा अशंकालीन कार्यकर्ताओं को भी शामिल करते है जो किसी विशिष्ट अवधि में विशेष भूमिका निभाने के लिए नियुक्त किये गये हैं। अध्यापको से सभी स्तरों पर अनुसंधानों या उसकी प्रोन्नति, प्रयोग और नवनिर्माण करने की आशा की जाती है। देश के विकास में शिक्षकों की अपरिहार्य भूमिका होती है। जो शैक्षिक संस्थाऐं अपने कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए संचालित करती हैं।

उच्चन्यालय के न्याय मूर्ति श्री माक्रण्डेय काटजू के अभिकथन से शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक के महत्व की झलक मिलती है। जिसका उल्लेख उन्होंने मृतक आश्रित कोटे में अध्यापक पद पर पुत्र की नियुक्ति संबंधी याचिका के निर्णय में किया हैं। काटजू (1988)के अनुसार-

" अध्यापक शिक्षा व्यवस्था का इंजन है वही प्रमुख औजार है जो, बच्चों के सांस्कृतिक मूल्यों को जगाता है। अतः अध्यापक पद पर चयन प्रतियोगिता एवं योग्यता के आधार पर ही होना चाहिए। क्योंकि यदि कोई अयोग्य व्यक्ति अध्यापक पद पर चयनित हो जाता है तो इसका परिणाम होता हैं कि हजारों बच्चों का भविष्य चौपट हो जायेगा।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों में वांछित गुणों के विकास का दायित्व शिक्षकों पर ही हैं। अच्छी से अच्छी शिक्षा व्यवस्था का संचालन समुचित गुणों से युक्त सुयोग्य शिक्षकों के अभाव में असफल होना निश्चित हैं। अतः आज महती आवश्यकता है कि अध्यापकों को अपने अध्यापन कार्य के दौरान सारे बच्चों को अपनी संतानो की तरह ही मार्गदर्शन प्राप्त कराने में योगदान देना होगा। तभी इतने बड़े विशाल देश को धर्मनिरपेक्ष रखा जा सकेगा।

1.6 शोध का शीर्षक –

प्रस्तुत शोध का शीर्षक निम्नानुसार है–

" अल्पसंख्यक समुदायो द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।"

1.7 शोध कार्य का परिसीमन–

प्रस्तुत शोध की निम्नलिखित सीमायें हैं–

- ❖ प्रस्तुत शोध हेतु मध्यप्रदेश के भिण्ड जिले में स्थित अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों को ही शामिल किया गया।
- ❖ प्रस्तुत शोध कार्य हेतु उन्हीं विद्यालयों का चयन किया गया जो जैन, ईसाई, और मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित हैं।
- ❖ प्रस्तुत शोध हेतु उन्हीं शिक्षकों का चयन किया गया जो कि जैन, ईसाई, और मुस्लिम समुदाय के है।
- ❖ प्रस्तुत शोध कार्य हेतु हाईस्कूल स्तर तक के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों का चयन किया गया।

1.8 शोध में प्रयुक्त पदों की संक्रियात्मक परिभाषाएं –

❖ अल्पसंख्यक –

कुल सामान्य जनसंख्या की तुलना में जिन समुदायों की संख्या कम हो और अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार पर निर्भर हो उन्हें 'अल्पसंख्यक' की संज्ञा दी जाती हैं। चूँकि भारत में हिन्दू बहुसंख्यक के पश्चात मुस्लिम, ईसाई, जैन, पारसी तथा सिक्ख आदि समुदाय अल्पसंख्यक की श्रेणी में आते हैं।

❖ धर्मनिरपेक्षता –

धर्मनिरपेक्षता से आशय सभी धर्मो के प्रति सम्भाव या आदर रखना और सभी धर्मो को समान दृष्टि से ताक्रिक आधार पर विश्लेषित करना है। अतः धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र, वह राष्ट्र होता है जिसकी और से किसी धर्म विशेष का प्रचार प्रसार या नियंत्रण

नहीं किया जाता है, और वह धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास रखते हुयें सभी धर्मो को समान समझता है। राष्ट्र के सभी नागरिकों को बिना किसी प्रकार के धार्मिक भेदभाव के समान सुविधा प्रदान करता हैं।

❖ **अभिवृत्ति –**

प्रस्तुत शोध में अभिवृत्ति से तात्पर्य अनुभवों के आधार पर व्यक्ति की उस संवेगात्मक प्रवृत्ति से है, जिसमें धर्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति, क्षेत्र या राज्य के निवासियों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव न किये जाने के संबंध में वह अपनी प्रतिक्रिया सकारात्मक या नाकारात्मक रूप में व्यक्त करता है।

❖ **शिक्षक –**

शिक्षकों से तात्पर्य उन महिला व पुरूष अध्यापको से है जो सन् 2008-09 के दौरान अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों में अध्यापनरत् हैं।

1.9 शोध के उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य है–

❖ जैन समुदाय द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

❖ ईसाई समुदाय द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

❖ मुस्लिम समुदाय द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

❖ अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में लिंग के आधार पर धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

❖ जैन और ईसाई समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति की तुलना करना।

- ❖ जैन और मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति की तुलना करना।
- ❖ ईसाई और मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति की तुलना करना।

1.10 प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाएं–

शोध के उद्देश्यों के अनुसार निम्नलिखित परिकल्पनायें निर्मित की गई–

- ❖ जैन, ईसाई व मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- ❖ जैन और ईसाई समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- ❖ जैन और मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- ❖ ईसाई और मुस्लिम समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- ❖ अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में लिंग के आधार पर धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

1.11 अध्ययन की आवश्यकता–

शिक्षा, विचारों एवं मूल्यों के संरक्षण एवं हस्तान्तरण हेतु सर्वाधिक सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करती है। शिक्षा के इस कार्य को सफलता पूर्वक संपन्न करने में अध्यापक की सर्वाधिक महती भूमिका होती है। विद्यालय का वातावरण, व शिक्षण अधिगम प्रक्रिया बालक की जीवन रेखाओं को अंकित करता हैं। विद्यालय समाज निर्माण की प्रक्रिया में प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण

के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया के सबसे महत्वपूर्ण संचालक शिक्षक का समाज की आवश्यकतानुसार अभिवृत्ति रखना अनिवार्य हैं। यदि समाज अपने नागरिकों में धर्मनिरपेक्षता की भावना का विकास करना चाहता है तो उसको चाहिए कि विद्यालय का वातावरण धर्मनिरपेक्षता का भाव लिये हों। तथा शिक्षक धर्मनिरपेक्षता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हों।

धर्मनिरपेक्षता जैसे महत्वपूर्ण मूल्य के प्रति विद्यार्थियों में सकारात्मक अभिवृत्ति के विकास में सफलता तभी पायी जा सकती हैं, जब एक और जहाँ पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषय वस्तु इस गुण के विकास हेतु सहायक हो, वही दूसरी और शिक्षक वर्ग की अभिवृत्ति भी धर्मनिरपेक्षता के प्रति सकारात्मक हो।

अतः यह जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस हुई कि शिक्षकों की धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति कैसी है? लिंग व समुदाय के आधार पर शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति में अंतर को जानने का विचार प्रस्तुत शोध की आवश्यकता को स्पष्ट करता है।

शोधकर्ता ने धर्मनिरपेक्षता से संबंधित विषय क्षेत्र के अन्तर्गत जब उपलब्ध संबंधित साहित्य का अवलोकन किया और धर्मनिरपेक्षता को केन्द्रित रख अनेकों अध्ययन संपन्न किये, परन्तु शोधकर्ता ऐसा कोई भी अध्ययन ज्ञात करने में अक्षम रहा जिसमें विशेष रूप से **"अल्संख्यक समुदायों द्वारा संचालित विद्यालयों के शिक्षकों में धर्मनिरपेक्षता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन"** किया गया हो। अतः अध्ययन के क्षेत्र में इस अन्तराल की उपस्थिति भी इस अध्ययन को आधार प्रदान करती है।